शब्द-अर्थ सम्बन्ध : जैन दार्शनिकों की दृष्टि में

□ डॉ० हेमलता बोलिया

(सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर)

अन्य समस्याओं की ही भाँति शब्द-अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध भी दार्शनिक जगत् में एक विवाद का विषय बनी हुई है। शब्द-अर्थ में परस्पर कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं, यदि कोई सम्बन्ध है तो वह कौन-सा आदि प्रश्नों को लेकर दार्शनिकों ने अपना-अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है।

कतिपय दार्शनिक शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं; किन्तु इसकी उपेक्षा नहीं जा सकती, क्योंकि यदि इनमें कोई सम्बन्ध नहीं है तो हमें जो यत्किंचित् की प्रतीति या अवबोध (ज्ञान) शब्द के माध्यम से होता है, वह नहीं होना चाहिए। जैन दार्शनिक हरिभद्रसूरि[1] का कथन है कि यदि यह माना जाय कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है, तो किसी सिद्ध पुरुष की निन्दा अथवा स्तुति कुछ भी करें तो इसमें कोई दोष नहीं होना चाहिए, तथा किसी को पुकारने पर उसे न तो सुनना चाहिए और न ही तदनुकूल आचरण करना चाहिए; किन्तु लोक में ऐसा प्रत्यक्षतः देखने को नहीं मिलता। इसे स्वीकार न करने पर हमारा प्रतिदिन का कार्य भी नहीं चल सकेगा। अतः शब्द और अर्थ में परस्पर सम्बन्ध है, इसे स्वीकार किये बिना हमारी गति नहीं है। यह बात पृथक् है कि इनमें परस्पर कौन-सा सम्बन्ध है?

इनके पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर भी दार्शनिकों[2] में मतैक्य नहीं है। दार्शनिकों ने इन दोनों के बीच नाना सम्बन्धों की कल्पना की है, जैसे—कार्यकारणभाव सम्बन्ध, वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध, तादात्म्य-सम्बन्ध, जन्य-जनकभाव सम्बन्ध, कुण्ड तथा बदरी के समान संयोग सम्बन्ध, तन्तु एवं पट के समान समवाय सम्बन्ध, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, आश्रय-आश्रयिभाव सम्बन्ध, सामायिक सम्बन्ध आदि। परन्तु इन सब सम्बन्धों का अन्तर्भाव दो सम्बन्धों किया जा सकता है—

१. शब्द और अर्थ में अनित्य सम्बन्ध है अथवा

२. नित्य सम्बन्ध है।

अनित्य सम्बन्ध

नैयायिकों ने शब्द और अर्थ में नित्य अथवा अपौरुषेय सम्बन्ध मानने वाले दार्शनिकों के मत को पूर्वपक्ष में रखकर सयुक्ति खण्डन किया है तदनन्तर स्वमत को समाधान या सिद्धान्त मत रूप में प्रस्थापित किया है।[3] इनके

---

१. बुद्धावर्णो पि चादोषः संस्तवेप्यगुणस्तथा ।
आह्वानाप्रतिपत्यादि शब्दार्थयोगतो ध्रुवम् ॥ —शास्त्रवार्तासमुच्चय का० ६७२.

२. न्यायमंजरी, आह्निक ४ पृ० २२०-२२.

३. न्यायमंजरी, आह्निक ४, पृ० २२०-२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतानुसार श्रोत्र के द्वारा ग्राह्यमान गुण शब्द है। यह मात्र आकाश में रहता है, अतः अनित्य है।[१] अतः शब्द और अर्थ में जो सम्बन्ध है वह भी अनित्य है। अमुक शब्द अमुक अर्थ का वाचक है, यह संकेत निश्चित होने पर ही अर्थ का बोध होता है और यह संकेत पुरुषाधीन है। इससे भी शब्द-अर्थ में अनित्य सम्बन्ध होना ही सिद्ध होता है।[२]

वैशेषिकों ने शब्द एवं अर्थ में सामायिक सम्बन्ध माना है जो नैयायिकों के अनित्य सम्बन्ध से भिन्न नहीं है।[३]

सांख्य दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में अपना कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया। इनका तो इतना ही कहना है कि शब्द अनित्य है, अतः तदाश्रित अर्थ भी अनित्य है। शब्द से हमें जो अर्थ-प्रतीति होती है वह उसके वाच्य-वाचक भावसम्बन्ध के कारण ही होती है। शब्द (वाच्य) और अर्थ (वाचक) है। इसीलिए हम व्यवहार में कहते हैं कि अमुक शब्द अमुक अर्थ का वाचक है।[४]

सांख्य दार्शनिकों के मत का भी सूक्ष्म पर्यालोचन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि शब्द एवं अर्थ में अनित्य सम्बन्ध है। वैसे भी दो अनित्य वस्तुओं का सम्बन्ध अनित्य ही होता है, यह लोकसिद्ध सत्य है।

नित्य सम्बन्ध

इसके विपरीत मीमांसक वेदान्ती[५] एवं वैयाकारणों[६] ने शब्द और अर्थ में नित्य सम्बन्ध माना है। अनित्य सम्बन्ध मानने वालों के मत का सयुक्ति खण्डन करते हुए स्वमत का प्रतिपादन किया है। इनका कहना है कि यदि शब्द और अर्थ में अनित्य सम्बन्ध है तो शब्द में अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि न्यायादि मत में शब्द को अनित्य माना गया है। जब शब्द अनित्य है, तो संकेतित शब्द तो उच्चारणोपरान्त नष्ट हो जायेगा और नष्ट हुआ शब्द अर्थ का बोधक हो ही नहीं सकता। जबकि लोक में शब्द से अर्थ-प्रतीति देखी जा सकती है। अतः शब्द को अनित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसीलिए शब्द और अर्थ में औत्पत्तिक (नित्य) सम्बन्ध है।[७] इसके मतानुसार शब्द नित्य है और इसी अर्थ में वेद नित्य हैं। जिसे हम शध्द की उत्पत्ति समझते हैं, वह भी वस्तुतः शब्द की अभिव्यक्ति है। शब्द अर्थ का बोधक है और शब्द एवं अर्थ में संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध है।

शब्द संज्ञा और अर्थ संज्ञी है। संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध होने पर भी शब्द से अर्थ प्रतीति नहीं होती है, वहाँ ज्ञानाभाव को ही कारण मानना चाहिए। जैसे—अन्धकार में रखी हुई वस्तु यदि ज्योतियुक्त नेत्रों से नहीं देखी जा सकती है तो इसका अर्थ वस्तु का अभाव नहीं हो सकता। उसी प्रकार शब्द सुनकर उसका अर्थ न जाना जाये, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है, अपितु वहाँ सहायकों का अभाव जानना चाहिए। इस प्रकार लौकिक-व्यवहार की दृष्टि से भी इनमें नित्य सम्बन्ध ही सिद्ध होता है, अनित्य नहीं। नित्य होने के कारण यह पुरुषकृत भी नहीं है, अपितु अपौरुषेय है।[८] इनका वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध भी नित्य है। जैसे पूर्व से ही स्थित

---

१. श्रोत्रग्राह्यो गुण शब्दः। आकाशमात्र वृत्तिः।
—तर्कसंग्रह, पृ० ७८; प्रशस्तपादभाष्य, पृ० ६९९.

२. जातिविशेषे चानियमात्। —न्याय दर्शन, २।२।५७.

३. सामायिकः शब्दार्थप्रत्ययः। —वैशेषिक सूत्र, ७. २. २०.

४. वाच्यत्वाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः। —सांख्यसूत्र (विद्योत्तमाभाष्य), पृ० ५।३७.

५. ब्रह्मसूत्र, १. ३. ८. २८ पर शंकर भाष्य।

६. नित्याः शब्दार्थासम्बन्धास्तत्राम्नातामहर्षिभिः।
सूत्राणामनुतन्त्राणां भाष्याणां प्रणेतृभिः॥ —वाक्यप्रदीप, ब्रह्मकाण्ड, २३.

७. औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तत्र ज्ञाना········ —मीमांसादर्शन (शाबर) १. ५.

८. द्रष्टव्य—बृहती, पृ० १३२; प्रकरणपंचिका, शास्त्रपरिच्छेद, पृ० २३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ को प्रदीप-प्रकाश प्रकट मात्र करता है, उत्पन्न नहीं; वैसे ही अर्थ को शब्द अभिव्यक्त मात्र करता है, उत्पन्न नहीं। इसी को भर्तृहरि[1] ने वेदान्त मत का आश्रय लेकर इस प्रकार कहा कि जैसे ज्ञान के दर्शन में ज्ञाता आत्मा की चरम परिणति ज्ञेय ब्रह्म के रूप में होती है, वैसे ही शब्द द्वारा अर्थ अपने रूप को प्रकट करता है, उत्पन्न नहीं।

बौद्ध दार्शनिकों का मत इन दोनों मतों से सर्वथा भिन्न है। प्रथमतः तो बौद्ध दार्शनिकों का कहना है कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध है ही नहीं और यदि अत्यन्त भिन्न प्रतीत होने वाले इन दोनों में एकत्व माना गया तो गाय और घोड़ा में भी एकत्व मानना पड़ेगा (जो किसी को भी स्वीकार्य नहीं हो सकता), क्योंकि इन दोनों (शब्द और अर्थ) में अन्वय और व्यतिरेक सम्बन्ध का अभाव है। एक से दूसरे की उत्पत्ति होती है, यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि मृत्तिका, दण्ड, जल, कुम्भकार, चक्रादि सम्बन्ध से (शब्द-व्यापार के बिना ही) घटोत्पत्ति होती है, वैसे ही शब्द भी बाह्य अर्थ के न रहने पर वक्ता की इच्छा मात्र से तालु, कण्ठादि के व्यापार से ही उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त शब्द वक्ता के मुँह में रहता है जबकि अर्थ (वस्तु) की स्थिति बाह्य है। इसलिए इनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो सकता। सम्बन्ध तो दो सम्बद्ध वस्तुओं में ही सम्भव है। यहाँ यह आशंका हो सकती है कि फिर लोक में वस्तु की प्रतीति कैसे होती है? इसके समाधान में बौद्ध दार्शनिकों का कहना है कि वस्तु की प्रतीत तो अपोह से होती है, न कि शब्द और अर्थ के किसी सम्बन्ध विशेष से। अपोह का अर्थ है निषेध। यह दो प्रकार का है—पर्युदास और प्रसज्यप्रतिषेध। इनके भी पुनः भेद-प्रभेद हैं।[2]

जैन मत

जैन दार्शनिकों का दृष्टिकोण सदैव समन्वयात्मक रहा है जिसके मूल में उनका अनेकान्त का सिद्धान्त है। अन्य मतों के समान इनके मत में दोषों की उद्भावना की सम्भावना नहीं रहती है। विवेचना का तरीका ही इनका निराला है। शब्द-अर्थ के सम्बन्ध में इनका कहना है कि निश्चित रूप से हम यह नहीं कह सकते हैं कि इनमें नित्य सम्बन्ध ही है अथवा अनित्य सम्बन्ध ही है और न ही यह कह सकते हैं कि अर्थ-प्रतीति अपोह अथवा अन्यापोह के माध्यम से होती है।

ये नैयायिकों के समान शब्द और अर्थ के बीच तदुत्पत्ति अर्थात् जन्य-जनकभाव सम्बन्ध नहीं मानते। इनका कहना है कि स्वार्थ (अर्थभूतवस्तु) की सत्ता न रहने पर भी शब्द विद्यमान रहता है। क्योंकि कभी-कभी हम एक अर्थ (वस्तु) को किसी अन्य ही शब्द से सम्बोधित करते हैं। सत्ताशून्य पदार्थों को भी शब्द द्वारा घोषित करना सम्भव होता है, उसी तरह अर्थ को भी शब्द द्वारा।[3]

न ही ये मीमांसकों के समान शब्द और अर्थ के बीच तादात्म्य अथवा नित्य सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। इनका कहना है कि यदि इनमें नित्य सम्बन्ध होता तो शब्द और अर्थ में पृथक्त्व नहीं होना चाहिए, जबकि लोक-व्यवहार

---

१. आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपं च दृश्यते।
अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते॥
—वाक्यप्रदीप, ब्रह्मकाण्ड, कारिका, ५०.

२. प्रसज्यप्रतिषेधश्च गौरगौर्न भवत्ययम्।
अतिविस्पष्टं एवायमन्यापोहोऽवगम्यते॥
........द्विविधोऽपोहः पर्युदास निषेधतः।
द्विविधः पर्युदासोऽपि बुद्ध्यात्मार्थात्मवेदतः॥
—तत्त्वसंग्रह

३. अर्थासन्निधिभावेन तद्दृष्टावन्यथोक्तितः।
अन्याभावनियोगाच्च न तदुत्पत्तिरप्यलम्॥
—शास्त्रवार्तासमुच्चय, का० ६४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कहीं पर भी ऐक्य दृष्टिगोचर नहीं होता। पुनश्च यदि शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध होता तो शस्त्रादि के उच्चारण मात्र से ही उच्चारण करने वाले व्यक्ति का मुख कट जाना चाहिए, लेकिन लोक में ऐसा नहीं होता। शब्द से अर्थ की प्रतीति संकेत-सिद्ध है, स्वयं-सिद्ध नहीं।[1]

यदि कहा जाय कि संकेत के द्वारा व्यक्त होने पर ही नित्य सम्बन्ध शब्दार्थ का प्रकाशक है, तो यह नित्य सम्बन्ध भी व्यक्ताव्यक्त भेद से दो प्रकार का होगा। संकेत के पुरुषाधीन होने के कारण वैपरीत्य भी सम्भव है, ऐसी स्थिति में वेदाप्रामाण्य हो जायेगा। इसके अतिरिक्त यह इसलिए भी सम्भव नहीं है कि अर्थ-प्रतीति सर्वदा, सर्वकालिक नहीं होती है। घटादिरूप अर्थों की अनित्यता प्रत्यक्षतः सिद्ध ही है।[2]

अन्यापोह अथवा अपोह की अवधारणा को जैन दार्शनिक ही अस्वीकार नहीं करते हैं अपितु नैयायिक, मीमांसक, वेदान्ती आदि भी इसका खण्डन करते हैं। इनका कहना है कि निषेधमुख से पदार्थ-प्रतीति सम्भव नहीं है, क्योंकि निषेधार्थक प्रवृत्ति विध्यर्थक से ही सम्भव है, जिसे बौद्ध मत में स्वीकार नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य के अभाव से स्वार्थ (जिस वस्तु का जो अर्थ है) की प्रतीति सम्भव भी नहीं है, क्योंकि "गौ" कहने पर "अगौ" की और "अगौ" कहने पर "गौ" की प्रतीति प्रथमतः होनी चाहिए, वह होती नहीं। फिर भी यह कहना कि गौ कहने पर प्रथमतः अगौ की प्रतीति होती है, उचित नहीं है क्योंकि लोक में ऐसा प्रत्यक्ष रूप में होता नहीं, वरन् गौ कहने पर श्रोता को गौ का ही श्रवण होता है, न कि अगौ का और तदनन्तर गौ रूप अर्थ की ही प्रतीति होती है। इसलिए अन्यापोह शब्द का अर्थ सिद्ध नहीं होता।[3]

अपोह के भेद मानना भी युक्त नहीं है क्योंकि यथार्थ वस्तु में ही नाना विकल्पों की प्रतीति होती है। यदि अभाव में भी भेद मानेंगे तो अपोह वस्तु होने की आपत्ति आयेगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन दार्शनिकों को न तो नित्य सम्बन्ध इष्ट है और न ही अनित्य, तथा बौद्धाभिमत अपोह भी स्वीकार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में शब्द से अर्थ (वस्तु) का बोध कैसे होगा? इसके समाधान में जैन दार्शनिकों का कहना है कि शब्द अपनी स्वाभाविक योग्यता और (पुरुषकृत) संकेत से वस्तु का ज्ञान कराने में कारण है।[4] शब्द और अर्थ की सहज स्वाभाविक योग्यता प्रतिपाद्य-प्रतिपादक शक्ति है, जो ज्ञान और ज्ञेय की ज्ञाप्य-ज्ञापक शक्ति के तुल्य है इसलिए योग्यता से अन्य कार्य-कारण भावादि सम्बन्ध सम्भव नहीं हो सकते हैं।[5]

हरिभद्रसूरि का कहना है कि शब्द तथा उसके अर्थ के बीच तादात्म्यादि सम्बन्ध में जो दोष बतलाये गये हैं; वे हमारे मत पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि उक्त प्रकार की कल्पना हमें अभीष्ट नहीं है तथा हमारे मतानुसार शब्दों

---

१. न तादात्म्यं द्वयाभावप्रसंगाद् बुद्धिभेदतः।
शस्त्रौद्युक्तौ मुखच्छेदादिसंगात् समयस्थितेः॥ —शास्त्रवार्तासमुच्चय, ६४५.

२. विस्तारार्थ द्रष्टव्य—न्यायविनिश्चयविवरणम्, भाग २, पृ० ३२०-२५;
प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ४०४-२७.

३. विस्तारार्थ द्रष्टव्य—मीमांसाश्लोकवार्तिक, अपोहवाद; न्यायमंजरी, भाग–२, आह्निक–५, पृ० २७६-७९;
प्रमेयकमल-मार्तण्ड, ३/१०१, पृ० ४३१-४६; प्रमेयरत्नमाला, ३/९७, पृ० २३४-४०.

४. सहजयोग्यता संकेतवशाद्धि शब्दादयः वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः।
—प्रमेयकमलमार्तण्ड, ३.१००;
—प्रमेयरत्नमाला, ३.९६

५. प्रमेयकमलमार्तण्ड, ३।१००, पृ०४२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अर्थों के बीच भेद का कारण कारणभेद हुआ करता है। यथा स्त्रियों में वन्ध्यावन्ध्यादि का भेद कारणभेद से हुआ करता है, उसी प्रकार शब्दों में सत्य मिथ्यादि का भेद कारणभेद से होता है।[1]

एक शब्द की विशेषता (अर्थात् यह शब्द सत्य है अथवा मिथ्या) हम शब्द के स्वरूप का विश्लेषण आदि करके जान सकते हैं। जैसे प्रमाण-भूत ज्ञान की प्रमाणता तथा अप्रमाणभूत ज्ञान की अप्रमाणता हम ज्ञान के स्वरूप का विश्लेषणादि करके जानते हैं; हमारी यह मान्यता सत्य है, क्योंकि यह लोकानुभवसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अमुक शब्द अमुक अर्थ का द्योतक है, इस प्रकार का ज्ञान किसी व्यक्ति को कराने की आवश्यकता तब होती है जब उस व्यक्ति के ज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम न हुआ हो, जहाँ तक योगियों के ज्ञान का प्रश्न है, उनको उक्त ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती है।[2]

मल्लिसेन के मतानुसार शब्द और अर्थ में कथंचित् तादात्म्य-सम्बन्ध है।[3] कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध से यह परिलक्षित होता है कि इस मत में शब्द और अर्थ का नित्यानित्यात्मक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के मूल में इनका अनेकान्तवाद का सिद्धान्त निहित है। वैसे भी ये शब्द को नित्यानित्यात्मक मानते हैं, जिससे भी शब्द और अर्थ में नित्यानित्यात्मक सम्बन्ध होना ही सिद्ध होता है।

□

---

१. अनभ्युपगमाच्चेह तादात्म्यादिसमुद्भवाः।
न दोषो नो न चान्येऽपि तद् भेदात् हेतु भेदतः॥
वन्ध्येतरादिको भेदो रामादीनां यथैव हि।
मृषासत्यादिशब्दानां तद्वत् तद्धेतु भेदतः॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय, ६५८-५९

२. ज्ञायते तद्विशेषस्तु प्रमाणेतरयोरपि।
स्वरूपालोचनादिभ्यस्तथा दर्शनतो भुवि॥
समयाक्षेपणं चेह तत्क्षयोपशमं विना।
तत्कर्तृत्वेन सफलं योगिनां तु न विद्यते॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय, पृ० ६६२-६३.

३. शब्दार्थयोः कथंचित् तादात्म्याभ्युपगमात्।

—स्याद्वादमंजरी, पृ० १२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org